भारत की बुनाई
सहकार्यता और अंतर-सांस्कृतिक प्रभाव

प्रोफेसर उषा नेहरू पटेल

निदेशक-अकादमिक, भारतीय कला एवं डिजाइन संस्थान (आईआईएडी), नई दिल्ली।
ईमेल: usha.patel@iiad.edu.in

भारत में बुनाई, शताब्दियों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से अपनी प्राचीन उत्पत्ति से लेकर विकास तक, परंपराओं, नवाचारों और प्रभावों की निरंतरता को दर्शाती है जो आज तक देश की अनूठी वस्त्र-परंपरा को आकार देती है। परंपराओं और नवाचारों की सहकार्यता से भारतीय वस्त्रों की शाश्वत सुंदरता और शिल्प कौशल का विकास हुआ है, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए देश की समृद्ध बुनाई परंपराओं की स्थिरता सुनिश्चित हुई है। हाल के वर्षों में, इन वस्त्रों के लिए वैश्विक स्तर पर सराहना ने भारत की बुनाई विरासत के महत्व को मजबूत किया है, जिससे बुनकर समुदायों के गौरव और पहचान को बढ़ावा मिला है। हाल के वर्षों में पारंपरिक बुनकरों और समकालीन डिजाइनरों के बीच बढ़ते सहयोग ने भारतीय वस्त्रों के परिदृश्य और बुनकर समुदाय की स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव किया है।

मिथकों और किंवदंतियों वाली भारत की प्राचीन भूमि में, जहां मिथक और किंवदंतियां हवा की सरगोशियों में अठखेलियां करती थी। एक कहानी काफी प्रचलित थी, वह थी देवताओं, दानवों और बुनाई की रहस्यमय कला की कहानी। देवताओं के दिव्य लोक में अद्वितीय बुनाई कौशल और सृजनात्मकता का धनी, एक दिव्य कारीगर रहता था जिसका नाम विश्वकर्मा। विश्वकर्मा के बुने अलौकिक वस्त्र देवलोक को सुशोभित करते और जगमगाते सितारों को टक्कर देने वाले थे। हुआ यूं कि विश्वकर्मा के इस अलौकिक बुनाई कौशल ने एक शक्तिशाली दानव वृत्र के मन में ईर्ष्या पैदा कर दी।

विश्वकर्मा के बुनाई के दिव्य रहस्यों को चुराने के लिए दृढ़ संकल्पित, वृत्र सीधे नश्वरक्षेत्र में अवतरित हुआ। उसकी उपस्थिति भूमि पर अंधेरा फैलाने लगी। उसने विश्वकर्मा के ज्ञान को हासिल करने की मांग की और इन्कार किए जाने की स्थिति में अराजकता फैलाने की धमकी दी। बुद्धि और साहस

से निर्देशित, अविचल विश्वकर्मा ने वृत्र की चुनौती का डटकर सामना किया। जैसे-जैसे विश्वकर्मा और वृत्त अपने भाग्य की रचना कर रहे थे, वास्तविकता का ताना-बाना उनके ब्रह्मांडीय द्वंद्व के भार से कांप रहा था। उनके भाग्य का फैसला करने के लिए उनके बीच बुनाई प्रतियोगिता चली।

सात दिनों और रातों तक, हस्तिनापुर का एक गाँव ऐसे तमाशे का गवाह बना जो इससे पहले कभी नहीं देखा गया था। अंत में, विश्वकर्मा की कलात्मकता और सृजनात्मकता की शक्ति तथा पवित्रता के सामने पाशविक शक्ति और काला जादू

विफल हो गया। उनकी अंतिम कृति इतनी शानदार थी कि वैकुंठ भी विस्मित होकर आंसुओं से सराबोर डूब गया। पराजित और दीन होकर, वृत्र वापस छाया में गायब हो गया।

आज भी, इस बुनकर की कथा सृजनात्मकता की शक्ति, अटूट साहस और अंधेरे पर प्रकाश की स्थायी जीत की कालातीत याद दिलाती है। भारत में बुने गए हर धागे के साथ, एक विरासत जीवित रहती है – देवताओं और राक्षसों का, बुनाई और आश्चर्य का एक मिथक, जो हमेशा समय के ताने-बाने में बुना जाता है। बुनाई की कला एक पवित्र उपहार बनी हुई है, जो सच्चे हृदय और दैवीय रूप से निर्देशित हाथों वाले लोगों को सौंपी गई है।

अपनी पौराणिक उत्पत्ति से परे, बुनाई भारतीय समुदायों के सामाजिक और महत्वपूर्ण रूप से आर्थिक ताने-बाने में गहराई से अंतर्निहित है। सदियों से, इसने अनगिनत कारीगरों और उनके परिवारों को आजीविका प्रदान की है, इस प्रकार यह कौशल जीविका और आर्थिक सशक्तीकरण के संसाधन के रूप में काम कर रहा है।

बुनाई की समृद्ध परंपरा सहस्राब्दियों पुरानी है। ऐतिहासिक रूप से, भारत में बुनाई का पता प्राचीन सिंधु घाटी सभ्यता (3300-1300 ईसा पूर्व) से लगाया जा सकता है, जहां कपास की खेती और कपड़ा उत्पादन के साक्ष्य मिले हैं। टेराकोटा

की मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन और मुहरें जैसी पुरातात्विक खोजें जटिल बुने हुए कपड़ों में लिपटे व्यक्तियों को दर्शाती हैं, जो बुनाई तकनीक और कपड़ा शिल्प कौशल की गहरी समझ का संकेत देती हैं।

दुनिया का सबसे पुराना ज्ञात ग्रंथ- ऋग्वेद (1500-500 ईसा पूर्व), बुनाई के महत्व को और अधिक मजबूत करता है। ऋग्वेद में प्राचीन भारतीय समाज में वस्त्रों के महत्व पर जोर देते हुए बुनाई का भी उल्लेख किया गया है। बुनाई न केवल एक व्यावहारिक आवश्यकता थी, बल्कि इसका धार्मिक और रस्मी महत्व भी था क्योंकि अनुष्ठानों, प्रसाद, अर्पण और समृद्धि तथा हेसियत के प्रतीक के रूप में कपड़ों का उपयोग किया जाता था।

संरक्षण की यह परंपरा पूरे इतिहास में जारी रही है। बाद में, जैसे ही अचमेनिद साम्राज्य का भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों में विस्तार हुआ, इसने क्षेत्र में फारसी रूपांकनों, तकनीकों और बुनाई परंपराओं को पेश करके सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान की। मुगल साम्राज्य (1526-1857) ने भारतीय बुनाई का और अधिक विस्तार किया, विशेष रूप से ब्रोकेड, मलमल और मखमल जैसे शानदार वस्त्रों के विकास में। कलाओं के संरक्षक मुगल सम्राटों ने समृद्ध कपड़ा उद्योग को और बढ़ावा दिया। उन्होंने दरबारी पोशाकों और उपहारों के लिए उत्तम किस्म के कपड़ों को बढ़ावा दिया।

यूरोपीय प्रभाव ने भी इस अंतर-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 15वीं शताब्दी में यूरोपीय व्यापारियों और उपनिवेशवादियों के आगमन से महत्वपूर्ण परिवर्तन आये। भारतीय वस्त्रों, विशेष रूप से सूती और रेशमी कपड़ों की मांग ने कपड़ा विनिर्माण केंद्रों के विस्तार को बढ़ावा दिया और यूरोपीय व्यापार नेटवर्क की स्थापना की। इसके अलावा, औपनिवेशिक काल के दौरान मशीनीकृत करघों और सिंथेटिक रंगों की शुरूआत ने उत्पादन विधियों में और क्रांति ला दी, जिससे घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय दोनों बाजारों की जरूरतों को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर उत्पादन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

शाही संरक्षण ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय शासक, नरेश, नवाब और राजा भी इसके उत्साही संरक्षक थे। उन्होंने कुशल बुनकरों की निरंतर मांग को सुनिश्चित करते हुए समारोहों, धार्मिक त्योहारों और दरबारी पोशाकों के लिए कपड़े तैयार करवाए। इस शाही संरक्षण के तहत बुनाई गिल्ड और कारीगर समुदाय फले-फूल और उन्होंने जटिल पैटर्न, रूपांकनों और अलंकरणों से सुसज्जित उत्कृष्ट वस्त्रों का उत्पादन किया।

बुनाई, अपनी इस समृद्ध विरासत को आगे बढ़ाते हुए और ऐतिहासिक जड़ों से आगे बढ़ते हुए, भारत की स्थायी सृजनात्मक भावना तथा सांस्कृतिक संचरण का एक शक्तिशाली प्रतीक बन

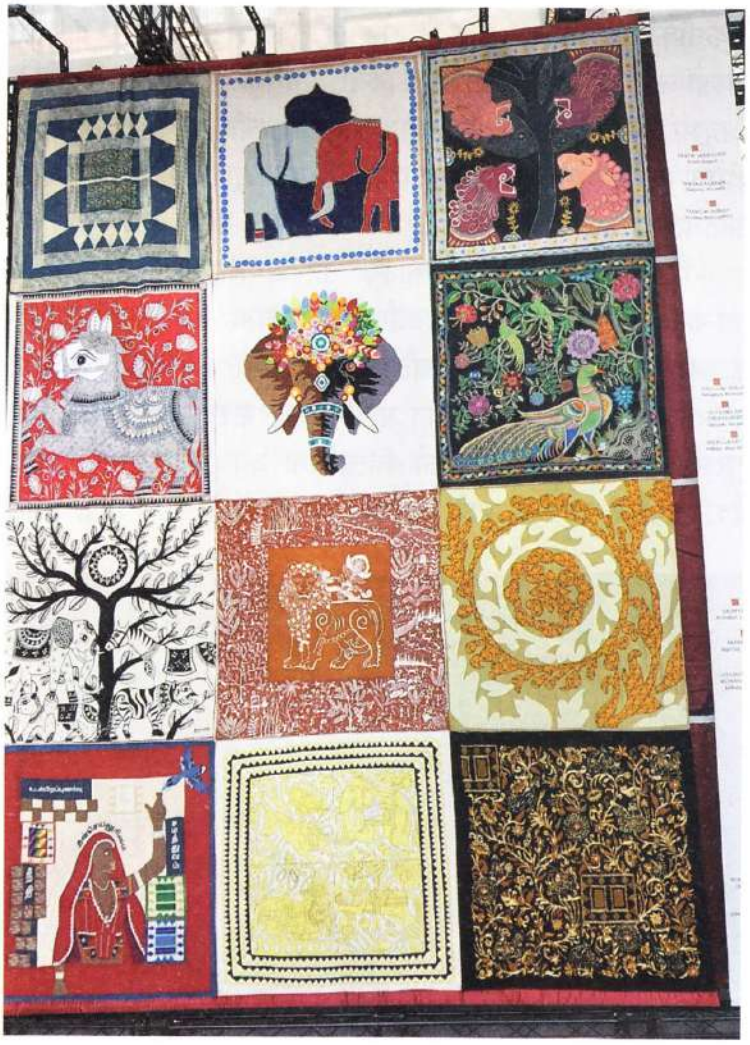

गई है। यह स्वयं को महज शिल्प कौशल से आगे बढ़ाकर एक जीवंत सामाजिक और सांस्कृतिक आधारशिला के रूप में विकसित करती है। गहरी जड़ें जमा चुकी यह परंपरा सहस्राब्दियों से देश की पहचान के साथ अटूट रूप से जुड़ी हुई है, जो विविध समुदायों के ताने-बाने में मूल्यों, विश्वासों और विरासत को समाहित करती है।

ताने और बाने की यह जटिल परस्पर क्रिया करघे से कहीं आगे तक फैली हुई है, जो जीवन की चक्रीय प्रकृति के लिए एक रूपक बन गई है। बुनाई की कला समाज के हर वर्ग के भारतीयों के दैनिक जीवन, विश्वासों, रीति-रिवाजों और परंपराओं से जुड़ी हुई है।

लोककथाओं और पौराणिक कथाओं के देवताओं और नायकों की शोभा बढ़ाने वाले जटिल परिधान शक्ति, स्थिति और पहचान के स्थायी प्रतीक के रूप में काम करते हैं। शुभ समारोहों के दौरान महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली आकर्षक साड़ियों से लेकर किसानों द्वारा पहने जाने वाले साधारण कपड़ों तक, बुनाई एक एकीकृत धागे के रूप में कार्य करती है, जो विविध भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं की परतों को एक साथ बांधता है।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी निखारे गए कौशल और तकनीकें यह सुनिश्चित करती हैं कि यह ज्ञान आगे बढ़ाया जाए, जिससे सम्मानित मास्टर बुनकरों की एक वंशावली तैयार होती है जिनकी विशेषज्ञता को उनके स्थाई मूल्यों के लिए सम्मान दिया जाता है। एक साथ बुने गए जटिल धागे परस्पर जुड़े हुए भारतीय समाज को प्रतिबिंबित करते हैं, जिनमें से प्रत्येक देश की सांस्कृतिक विरासत के जीवंत चित्रपट में योगदान देता है।

प्राचीन काल से चली आ रही भारत की बुनाई परंपराओं को प्रासंगिक बनाने से एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का पता चलता है। भारत में बुनाई अपनी प्राचीन उत्पत्ति से लेकर सदियों के सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से अपने विकास तक, परंपराओं, नवाचारों और प्रभावों की निरंतरता को दर्शाती है जो देश की अनूठी वस्त्र-परंपरा को आकार देती है।

देश भर में बुनाई की अलग-अलग शैलियां और तकनीकें उभरी हैं, जिनमें से प्रत्येक एक विशिष्ट क्षेत्रीय पहचान को दर्शाती है। अपनी अनूठी शैलियों, तकनीकों और दार्शनिक आधारों के लिए प्रसिद्ध कुछ की सूची नीचे दी गई है:

बनारसी रेशम - बनारसी रेशम की बुनाई, अपनी भव्यता, सुंदरता और जटिल पैटर्न के लिए जानी जाती है जो भारतीय संस्कृति में 'शृंगार' (अलंकरण) की अवधारणा की प्रतीक है। मुगल कला और धातु के धागों के उपयोग से प्रेरित रूपांकनों में सुंदरता और अलंकरण पर जोर दिया गया है। अक्सर शादियों, त्योहारों और शुभ अवसरों से जुड़े ये शानदार कपड़े समृद्धि और सौभाग्य का प्रतीक हैं।

कांचीपुरम रेशम- कांचीपुरम रेशम बुनाई 'धर्म' की दार्शनिक अवधारणा से ओत-प्रोत है, जो धार्मिकता, कर्तव्य और सदाचार का प्रतिनिधित्व करती है। अपनी समृद्ध बनावट, जीवंत रंगों और सोने या चांदी के धागों से बुने गए विशिष्ट जरी बार्डर के लिए प्रसिद्ध, कांचीपुरम रेशम साड़ियां सूक्ष्म शिल्प कौशल का प्रमाण हैं। पारंपरिक पिटलूम और पीढ़ियों से चली आ रही तकनीकों का उपयोग करके, कुशल कारीगर इन श्रम-आधारित वस्त्रों का निर्माण करते हैं। अक्सर धार्मिक समारोहों और शुभ अवसरों के दौरान पहनी जाने वाली कांचीपुरम साड़ियां, इन्हें धारण करने वालों की परंपरा और नैतिक मूल्यों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाती हैं।

पैठणी- पैठणी बुनाई 'लक्ष्य' की अवधारणा का प्रतीक है, जो आकांक्षा, लक्ष्य-निर्धारण और आध्यात्मिक उत्थान को दर्शाता है। अपनी जटिल बुनाई, जीवंत रंगों तथा मोर रूपांकनों (सुंदरता, उर्वरता और दैवीय सुरक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाली) के लिए पुरस्कृत, पैठणी साड़ियों को विलासिता का प्रतीक माना जाता है। पारंपरिक रूप से सोने या चांदी के धागों के साथ शुद्ध रेशम

से तैयार की गई, इन साड़ियों में एक अनूठी 'टेपेस्ट्री बुनाई' तकनीक इस्तेमाल होती है, जिसमें डिजाइन को कढ़ाई या छपाई करने के बजाय सीधे कपड़े में बुना जाता है।

गुजरात का पटोला शिल्प- गुजरात का पटोला शिल्प विशेष रूप से पटोला साड़ियां, 'वसुधैव कुटुंबकम' (दुनिया एक परिवार है) की अवधारणा का ज्वलंत उदाहरण है। डबल इकत बुनाई तकनीक का उपयोग करके तैयार किए गए, इन वस्त्रों में जटिल ज्यामितीय पैटर्न और रूपांकन हैं जो सद्भाव, संतुलन और ब्रह्मांडीय व्यवस्था का प्रतीक हैं। पटोला साड़ियां गुजरात की सांस्कृतिक विविधता और सांप्रदायिक सद्भाव का प्रचार करती हैं, जो मतभेदों के बीच मानवता की एकता को दर्शाती हैं।

भारत की बुनाई परंपराएं, मात्र उपयोगितावादी शिल्प से दूर, सांस्कृतिक पहचान की बुनी हुई टेपेस्ट्री बन गई हैं। जैसे-जैसे ये परंपराएं आधुनिकता की धाराओं में आगे बढ़ती हैं, उनके संरक्षण और विकास में नई रुचि उनकी निरंतर जीवंतता सुनिश्चित करने का वादा करती है, जिससे वे कारीगरों और कपड़ा उत्साही लोगों की भावी पीढ़ियों को प्रेरित कर सकते हैं। हाल के वर्षों में पारंपरिक बुनकरों और समकालीन डिजाइनरों के बीच बढ़ते सहयोग ने भारतीय वस्त्रों और बुनाई समुदाय के परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से नया आकार दिया है।

पूरे भारत में पारंपरिक बुनाई समुदायों ने, बदलती बाजार मांगों, घटती कारीगर आबादी और बड़े पैमाने पर उत्पादित वस्त्रों से प्रतिस्पर्धा के लिए खुद को ढालने के लिए लंबे समय से संघर्ष किया है। समकालीन डिजाइनरों के साथ सहकार्यता ने इन कारीगरों को अपने कौशल का प्रदर्शन करने, अपनी शिल्प विरासत को संरक्षित करने और स्थायी आजीविका सुरक्षित करने के लिए एक बहुत जरूरी मंच प्रदान किया है। इस प्रकार का सहयोग पारंपरिक तकनीकों को आधुनिक डिजाइनों के साथ जोड़कर, पारंपरिक वस्त्रों को समकालीन उपभोक्ताओं के लिए प्रासंगिक बनाने में मदद करता है, जिससे उनका निरंतर अस्तित्व और विकास सुनिश्चित होता है।

इस पुनःस्थापन आंदोलन का नेतृत्व सब्यसाची मुखर्जी, अनिता डोंगरे, राहुल मिश्रा, हिमांशु शनि और अनीथ अरोड़ा जैसे प्रसिद्ध डिजाइनर कर रहे हैं। वे अपने कार्यों के माध्यम से भारत की कपड़ा विरासत के प्रति गहरा सम्मान और इसके संरक्षण के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं। पारंपरिक कारीगरों के साथ सहयोग के माध्यम से, उन्होंने इन सदियों पुरानी परंपराओं में नई जान फूंक दी है।

उनका प्रभाव महज संरक्षण तक ही सीमित नहीं है। समकालीन सौंदर्यशास्त्र के प्रति अपनी गहरी नजर के कारण वे रंग, बनावट और डिजाइन के साथ प्रयोग करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप पारंपरिक वस्त्रों की आधुनिक व्याख्याएं होती हैं जो वैश्विक दर्शकों को पसंद आती हैं। विचारों का यह पर-परागण न केवल कपड़ा डिजाइन में बल्कि उत्पादन विधियों में भी प्रयोग और नवीनता की भावना को बढ़ावा देता है, जिससे सम्मानित शिल्पों का निरंतर विकास सुनिश्चित होता है। डिजाइनर, नई सामग्रियों, बुनाई तकनीकों और रंगाई विधियों को पेश करके परंपरा की अखंडता के प्रति सम्मान बनाए रखते हुए नवीनता की भावना को बढ़ावा देते हैं।

पारंपरिक और आधुनिक तत्वों के मिश्रण से अद्वितीय और नवोन्मेषी कपड़ा निर्माण होता है जो वैश्विक अपील रखता है। ये सहयोग पारंपरिक समुदायों को कई तरीकों से सशक्त बनाते हैं। कारीगरों को नए बाजारों, डिजाइन विशेषज्ञता और व्यावसायिक अवसरों तक पहुंच प्राप्त होती है। इन भागीदारियों से आगे बढ़ाया गया यह सांस्कृतिक आदान-प्रदान भारत की वस्त्र-परंपरा के लिए वैश्विक सराहना हासिल करता है। समकालीन सौंदर्यशास्त्र से ओत-प्रोत भारतीय वस्त्र अंतरराष्ट्रीय फैशन रनवे की शोभा बढ़ाते हैं और देश की सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि और विविधता का प्रदर्शन करते हैं।

इसके अलावा, नैतिक प्रथाएं और संधारणीयता प्रमुख विचार हैं। कई डिजाइनर यह सुनिश्चित करते हुए कि कारीगरों को उचित वेतन मिले और वे नैतिक परिस्थितियों में काम करें, निष्पक्ष व्यापार प्रथाओं को प्राथमिकता देते हैं। प्राकृतिक रेशों के लिए जैविक खेती को बढ़ावा देने और प्राकृतिक रंगों के उपयोग से, हानिकारक रसायनों पर निर्भरता कम होती है, पर्यावरण प्रदूषण कम होता है और पारंपरिक तकनीकों का संरक्षण होता

है। नैतिक सोर्सिंग पर्यावरण-अनुकूल सामग्रियों और प्रक्रियाओं तक फैली हुई है, जिससे अपशिष्ट में गिरावट आती है और संसाधनों की खपत भी कम होती है।

डिजाइनर केवल विरासत शिल्प को अपने काम में शामिल नहीं करते हैं, वे कारीगरों को भी सशक्त बनाते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम और कार्यशालाएं ज्ञान के आदान-प्रदान और तकनीकी उन्नयन की सुविधा प्रदान करती हैं, जिससे पारंपरिक बुनाई प्रथाओं की निरंतर प्रासंगिकता और प्रतिस्पर्धात्मकता सुनिश्चित होती है। कारीगरों को कौशल विकास और क्षमता-निर्माण के अवसर मिलते हैं, जिससे वे अपने उद्यमशीलता कौशल को बढ़ा सकते हैं और उभरते बाजार रुझानों के अनुकूल कार्य कर सकते हैं।

अपने नेटवर्क और प्लेटफार्मों का लाभ उठाकर, डिजाइनर इन समुदायों के लिए घरेलू और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापक बाजारों के दरवाजे खोलते हैं। वे इन कारीगरों की कलात्मकता का प्रदर्शन करते हैं, उनके काम को दर्शकों के सामने पेश करते हैं। इससे न केवल बिक्री बढ़ती है बल्कि बुनकर समुदायों के लिए आर्थिक स्थिरता और विकास के अवसरों को भी बढ़ावा मिलता है।

पीढ़ियों से चली आ रही पारंपरिक बुनाई तकनीकों को संरक्षित किया जाता है और भविष्य की पीढ़ियों तक उनके प्रसारण को सुनिश्चित किया जाता है। हाल के वर्षों में, इन वस्त्रों के लिए वैश्विक स्तर पर मिली सराहना ने भारत की बुनाई-परंपरा के महत्व को मजबूत किया है, जिससे बुनाई समुदायों के भीतर गौरव और पहचान को बढ़ावा मिला है। आपसी सम्मान, निष्पक्षता और पर्यावरणीय जिम्मेदारी से चिह्नित डिजाइनरों और पारंपरिक बुनकरों के बीच भागीदारी ने इस विरासत की परिवर्तनशीलता और जीवंतता को बढ़ाया है।

ये सहयोग भारतीय वस्त्रों की शाश्वत सुंदरता और शिल्प कौशल को विकसित करते हैं और इस क्षेत्र को पनपने में सहायता करते हैं, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए देश की समृद्ध बुनाई परंपराओं की स्थिरता सुनिश्चित होती है। भारत में बुनाई न केवल शिल्प से कहीं अधिक का प्रतीक है, बल्कि यह देश की परंपराओं, इतिहास और मूल्यों का भी प्रतीक है। यह अपने लोगों की सरलता, सृजनात्मकता और परिवर्तनशीलता के प्रमाण के रूप में खड़ा है, जो अतीत, वर्तमान और भविष्य के धागों को एक कालातीत ताने-बाने में पिरोता है और भारत की पहचान को आकार देता है। ❑

कृपया ध्यान दें

मई 2024 अंक अब उपलब्ध...

साहित्य जगत की रोचक सामग्री के साथ...

आज ही पुस्तक विक्रेता से
आजकल (हिन्दी) खरीदें।
सदस्य बनने के लिए
क्यू आर कोड स्कैन करें।